

भारतीय ज्ञान परंपरा और साहित्य

नेहा उदासी

सारांश:- ज्ञान वह दिव्यपुंज है, जो व्यक्ति के जीवन से अज्ञान रूपी तम का हरण कर अपनी तेजस्विनी किरणों का प्रकाश चहुँओर बिखेर देता है। भारत में हमेशा से ही ज्ञान की अत्यंत ही समृद्ध परंपरा रही है। जिसमें वेद, वेदांग, उपनिषद्, संहिताएँ, स्मृतियाँ, पुराण, रामायण, महाभारत, व्याकरण और कई लोककथाएँ समाहित हैं। यदि हम विश्व के इतिहास और साहित्य पर दृष्टिपात करें तो पाते हैं कि जब भूगोल का अधिकांश भाग अपनी सभ्यताओं के निर्माण और जीवन-यापन के लिए संघर्षरत था तब आर्यावर्त की धरा पर एक विकसित सभ्यता स्थापित हो चुकी थी जिसका आधार था समुन्नत और श्रेष्ठ ज्ञान। जो लोग आज पश्चिम के ज्ञान, उसकी खोजों, उसके साहित्य और उसकी संस्कृति से चमत्कृत एवं आश्चर्यचकित हो रहे हैं। उनको अपनी आँखों पर पड़े पर्दे तथा मस्तिष्क में लगी जंग को हटाकर अच्छी तरह से यह देख व समझ लेना चाहिए कि जिस तिलिस्म को दिखाकर यूरोपीय एवं अन्य देश हमें अपना जादू दिखा रहे हैं, भारत उसका पुराना जादूगर है। विश्व ने विज्ञान, इतिहास, समाजशास्त्र, वाणिज्य, दर्शन, अर्थशास्त्र, राजनीति, गणित, भूगोल और तकनीकी की शिक्षा इधर से ही ग्रहण की है। हमने हमेशा से ही 'विश्व का कल्याण हो' के सिद्धांत पर जगत का भला किया, परंतु दुनिया ने हमें इसका उल्टा प्रतिफल दिया। हमेशा से हमारे वैचारिक और सामरिक सामर्थ्य को कुंद करने का कुत्सित प्रयास चलता रहा।

इन कई सारे भीषण आघातों के बाद भी हमारी ज्ञान परंपरा धूमिल नहीं हो सकी। इसका तेज, ताप और चमक आज भी वैसी ही है। हाँ, कुछ परिवर्तन हमें अवश्य ही देखने को मिलते हैं। भारतभूमि पर आए दुर्दिनों में साहित्य ने हमारी ज्ञान परंपरा को संरक्षित रखा। जिससे भारतीय ज्ञान का सातत्य बना रहा। कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है और ज्ञान समाज को दिशा दिखाने का कार्य करता है। इसलिए साहित्य एवं ज्ञान का अन्योनाश्रित संबंध है।

बीजशब्द:- ज्ञान परंपरा, साहित्य, दर्शन, भाषा, व्याकरण, समाज, विरासत।

प्रस्तावना:- व्यक्ति, समाज और देश की उन्नति ही किसी राष्ट्र की श्रेष्ठता का परिचायक होती है। विकास की इस यात्रा में कई कारक सहयोगी होते हैं। जिनमें अर्थ, सुरक्षा, शिक्षा, रोजगार, एकता और सांप्रदायिक सौहार्द अपनी मुख्य भूमिका में होते हैं। इन कारकों के समुचित संचालन का ज्ञान ही इनकी उपयोगिता और प्रभाव को

निर्धारित करता है। हमारे धर्मग्रंथों में ज्ञान की तुलना यज्ञ से की गई है तथा इसे पंच महायज्ञों में प्रथम स्थान भी दिया गया है। ज्ञान का अर्थ केवल पढ़ा-लिखा होना नहीं है बल्कि इसका अर्थ अत्यंत वृहद् है। एक अनपढ़ आदमी भी ज्ञानी हो सकता है। महात्मा कबीर इसके अन्यतम उदाहरण हैं, जिन्होंने मसि और कागज़ को छुआ भी नहीं था, परंतु जिज्ञासु प्रवृत्ति होने के कारण सत्संग से उन्होंने सांसारिक व आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त किया। यह मेहनत, लगन, ईमानदारी, कर्मठता एवं जिजीविषा के द्वारा प्राप्त होता है। कबीर ने शिक्षित न होते हुए भी अपनी ज्ञान गंगा से साहित्य की भूमि को सींचकर हरा-भरा कर दिया।

उत्कृष्ट साहित्य सदैव गहरे ज्ञान की माँग करता है, जो साहित्यकार इसकी पूर्ति कर पाता है उसका साहित्य कालजयी बन जाता है और जो मात्र कोरा पांडित्य प्रदर्शन करने में लगे रहते हैं उनकी रचनाएँ समय के थपेड़ों में समाप्त हो जाती हैं जिसके कई उदाहरण ज्ञान परंपरा व साहित्य जगत में मौजूद हैं। भारत में रचे गए उच्चकोटि के साहित्य ने सदैव ही भारतीय ज्ञान परंपरा की अजस्र धारा प्रवाहित की है। जिसमें वेदों से लेकर वर्तमान साहित्य तक के विविध चित्र उकेरे गए हैं। ज्ञान मानव मन के कलुष का निवारण कर उसकी शुद्धि कर देता है। समस्त चराचर में ज्ञान के समान शुद्धि का अन्य कोई उपाय नहीं है। इस संदर्भ में श्रीमद्भगवद्गीता में कहा भी गया है:-

“न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमहि विद्यते।

तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मानि विन्दति।।”¹

ज्ञान ही कर्तुम - अकर्तुम का विवेक प्रदान करता है। श्रीकृष्ण ने कुरुक्षेत्र की युद्ध भूमि में अपने कर्तव्य से च्युत होते अर्जुन को उपदेश दिया जिससे उसके ज्ञान को स्थैर्य मिला व अर्जुन अपने कर्तव्य के प्रति अग्रसर हुए। साहित्य समाज को दर्पण दिखाते हुए उसे अच्छे-बुरे का अंतर करना सिखाता है। इसमें व्यक्ति अपने प्रतिबिंब को देखकर लड़खड़ाते हुए कदमों को सही से स्थिर करने का प्रयास करने लगता है। प्रत्येक जन के मन-मस्तिष्क पर साहित्य अपना प्रभाव अवश्य डालता है। जब कोई साहित्य ज्ञान की विभिन्न दिशाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम बनता है, तो वह सारगर्भित ज्ञान की कोटि में रखा जाता है। भारत में फैली हुई ज्ञान परंपरा की नींव आश्रमों में प्रचलित गुरु-शिष्य परंपरा में रखी गई। हमारे भारत में ज्ञान के प्रसार की वैदिक और श्रमण दो परंपराएँ मुख्य रूप से दिखाई देती हैं। यद्यपि दोनों का उद्देश्य मनुष्य को ज्ञानवान और शिक्षित बनाना था। इनमें आस्तिक तथा नास्तिक दर्शन सम्मिलित हैं। आस्तिक दर्शनों में न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदांत यह छः दर्शन दृष्टव्य हैं और नास्तिक दर्शनों में जैन, बौद्ध, चार्वाक दर्शन प्रमुख हैं। इन्हीं के आधार पर भारत की ज्ञान धारा प्रवाहित हुई। इनके माध्यम से ज्ञान का संचार संपूर्ण भारत

और अन्य देशों में हुआ। इस समय सुसंपन्न एवं उच्च कोटि के साहित्य की रचना हुई, जिसकी ऐसी धूम मची की विश्व का एक बड़ा भू-भाग भारतीय ज्ञान परंपरा से लाभान्वित हुआ। ज्ञान की संपदा को हमेशा टकसाली संपदा से श्रेष्ठ माना जाता रहा है। ज्ञानहीन मानव समाज के द्वारा धरती पर एक बोझ समझा जाता है और उनकी उपमा पशु से दी जाती है। चाणक्य- नीति कहती है कि सेनापति के बिना सेना, पुरुष के बिना स्त्री तथा आचरण के बिना ज्ञान व्यर्थ है। इन उदाहरणों से तात्पर्य कि अज्ञानी व्यक्ति का जीवन व्यर्थ होता है। कहा भी गया है:-

“हतं ज्ञानं क्रियाहीनं हतश्चाज्ञानतो नरः ।

हतं निर्णायकं सैन्यं स्त्रियो नष्टा ह्यभर्तृकाः।।”²

इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने ज्ञान में उत्तरोत्तर वृद्धि कर ज्ञानकोष को संपन्न कर अर्जित किए गए ज्ञान को मानव के कल्याण के लिए उपयोग करना चाहिए। इसकी सीख हमें अपने वैदिक और लौकिक साहित्य दोनों से मिलती आई है। भारतीय साहित्य तो ज्ञान का विपुल एवं अक्षय भंडार है। जो न केवल नैतिक, धार्मिक व उपदेशात्मक शिक्षा देता है प्रत्युत् यह हमें विज्ञान, दर्शन, भूगोल, वाणिज्य, खगोल, गणित, ज्योतिष, व्याकरण, चिकित्सा, योग, कौशल, तकनीकी और राजनीति का सम्यक् ज्ञान भी देता है। हमारा देश भाषिक विविधता का पर्याय है। यहाँ अलग-अलग भौगोलिक परिवेश के हिसाब से खानपान तथा रहन-सहन में तो वैविध्य है ही, साथ ही भाषाओं की विभिन्नता भी है। भारत में प्रचलित भाषाओं में लगभग हर भाषा में साहित्य की रचना हुई है और सभी में उच्चकोटि का साहित्य सृजन भी किया गया है। जो हमें ज्ञान की विभिन्न शाखाओं एवं परंपराओं की जानकारी देता है। यदि हम विज्ञान की बात करें तो हमारे 'वेद', दर्शन की चर्चा करें तो 'वैदिक और लौकिक साहित्य परंपरा', व्याकरण में भरतमुनि का 'नाट्यशास्त्र' व पाणिनि का 'अष्टाध्यायी', वाणिज्य तथा अर्थशास्त्र के संबंध में चाणक्य का 'अर्थशास्त्र', खगोल एवं ज्योतिष के क्षेत्र में आर्यभट्ट का 'आर्यभटीय', गणित में वराहमिहिर का 'पंचसिद्धांतिका', भास्कराचार्य का 'सिद्धांत शिरोमणि' व ब्रह्मगुप्त का 'ब्रह्मस्फुटसिद्धांत', योग में महर्षि पतंजलि का 'महाभाष्य' और चिकित्सा के क्षेत्र में महर्षि चरक का 'चरक संहिता' व महर्षि सुश्रुत का 'सुश्रुत संहिता' भारतीय ज्ञान परंपरा को विश्व के कोने-कोने में फैलाने वाले महान ग्रंथों की रचना की गई। भारत की गौरवशाली श्रृंखला पर हमें गर्व होना चाहिए। इसकी गौरव गाथा का वर्णन करते हुए, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी कहते हैं:-

“शैशव-दशा में देश प्रायः जिस समय सब व्याप्त थे,

निःशेष विषयों में तभी हम प्रौढ़ता को प्राप्त थे।

संसार को पहले हमीं ने ज्ञान-भिक्षा दान की,

आचार की, व्यापार की, व्यवहार की, विज्ञान की।।”³

हमारे भारतीय साहित्य ने हमेशा ही अपनी ज्ञान परंपराओं को प्रवाहित रखा। विदेशी आक्रांताओं ने भारत की पुष्पित-पल्लवित और लहलहाती हुई ज्ञान परंपरा को झुलसाने में कोई कमी नहीं की। जिन पुस्तकों में हमारा ज्ञान लिखित रूप में सहेजकर रखा जाता है, बर्बरों ने उन पुस्तकों के आलय को अग्निमय कर दिया। नालंदा विश्वविद्यालय इसका इतिहास प्रसिद्ध उदाहरण है, जिसकी ज्वाला कई महीनों तक धधकती रही। ऐसे प्रतिकूल वातावरण में भी हमारे चिंतकों, दार्शनिकों एवं साहित्यकारों ने हार नहीं मानी और पुनः अपनी ज्ञान परंपरा को जीवित रखने के लिए उन्होंने कलम का सहारा लिया। इन लोगों ने हर प्रकार से भारतीय ज्ञान को साहित्य की विधाओं में ढालना आरंभ कर दिया। साहित्य का आधार लेकर ज्ञान का चरमराता हुआ ढांचा फिर से सम्मिलित गया। साहित्य के द्वारा हतोत्साहित मानस को दृढ़ संबल प्राप्त होता है। तुलसी बाबा द्वारा विरचित ‘रामचरितमानस’ इसका अप्रतिम दृष्टांत है। मुगलों के अत्याचारों से दुःखी, सताये हुए तथा निरुत्साहित समाज में एक अद्भुत चेतना का संचार कर लोगों को अपने कर्मों में फिर से लगाने का कार्य रामचरितमानस से ही अधिक संभव हुआ। भारत से दूर देशों में भेजे गए मजदूर अपने साथ राम के चरित्र का यह गुटका अपने साथ ले जाते थे। जब वे घनघोर पीड़ा एवं संकट का अनुभव करते, तो रामचरितमानस की चौपाइयों और दोहों को गाने लगते जिससे उनमें नवीन ऊर्जा का संचार हो जाता। रामानंद, कबीर, जायसी, सूरदास, तुलसीदास, रैदास, नंददास आदि के साहित्य ने लोगों को बहुत अधिक प्रभावित किया। कबीर ने ज्ञान को संसार की सर्वश्रेष्ठ पूंजी मानते हुए कहा है, ज्ञान हमें कहीं से भी प्राप्त हो उसे ग्रहण कर लेना चाहिए। इस संबंध में दुनिया की क्या राय है, इसके बारे सोचना हमारा काम नहीं है। इस संबंध में कबीर कहते हैं, कि:-

“जाति न पूछो साधु की पूछ लीजिए ज्ञान।

मोल करो तलवार का पड़ा रहन दो म्यान।

हस्ती चढ़िए ज्ञान को सहज दुलीचा डारि।

स्वान रूप संसार है भूँकन दे झकमारि।।”⁴

ज्ञान को किसी एक भाषा के बंधन में नहीं बाँधा जा सकता है क्योंकि भाषा ज्ञान के प्रसार का माध्यम होती है। जिसकी श्रेष्ठता ज्ञान के प्रचार में है न कि उसको भाषाई कड़ियों से जकड़ने में। भारत में बोली जाने और साहित्य में प्रयोग की जाने वाली भाषाएँ अपने अंदर असीमित ज्ञान को समाहित किए हुए हैं। संस्कृत, तमिल, पालि, प्राकृत भाषाओं में विश्व का अच्छे से अच्छा साहित्य रचा गया है। हिन्दी, बँगला, मराठी, गुजराती, उड़िया, तैलंगी, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, पंजाब, असमिया, भोजपुरी, मैथिली, सिंधी आदि आजकल की प्रचलित प्राकृत भाषाएँ हैं, जिनमें अनेक

संत, महात्माओं, सुधारकों, विचारकों, दार्शनिकों तथा अन्य कई मनीषियों ने सदाचार, विज्ञान, समाजशास्त्र, कला-कौशल, इतिहास और नीति की शिक्षाएँ देकर अपनी ज्ञान परम्परा को स्थिर रखा है। इन सबकी परम्परागत शिक्षाएँ हमें अधिकांशतः लिखित रूप में प्राप्त होती हैं। इस प्रकार से भारतीय ज्ञान परंपरा से ओतप्रोत साहित्य हमारे ज्ञान के उत्कर्ष की गवाही दे रहा है और इसी परंपरा के वंशज होने के नाते हमें इसके संरक्षण में तन-मन-धन सभी प्रकार से सहायता करनी चाहिए। क्योंकि हम सभी भारतवासी यहाँ की ज्ञान परंपरा और साहित्य के वारिस हैं इसलिए हमें अपने देश की परंपराओं पर अभिमान होना ज़रूरी है। इस बारे में वशिष्ठ अनूप जी की गज़ल के कुछ शेर उद्धरित हैं:-

“तुलसी के, जायसी के, रसखान के वारिस हैं,
कविता में हम कबीर के ऐलान के वारिस हैं।
हम सीकरी के आगे माथा नहीं झुकाते,
कुम्भन की फ़कीरी के, अभिमान के वारिस हैं।।”⁵

कुछ लोगों के द्वारा साहित्य की पवित्र भूमि को मैला करने का कुकृत्य भी चल पड़ा है। जिसमें भारतीय ज्ञान की परंपराओं का खंडित और विकृत रूप दिखाई देता है। ग़ज़ब बात यह है कि आधुनिक पीढ़ी इस साहित्य से बहुत अधिक प्रभावित हो रही है। जिसका सबसे बड़ा एवं मूल कारण भारतीय ज्ञान परंपरा से कटाव और अनभिज्ञता है। वर्तमान पीढ़ी को चाहिए कि वह अपनी जड़ों की ओर लौटे तथा हमारी ज्ञान रूपी विरासत को सहेजने का प्रयास करें। इसके लिए अनर्गल प्रलाप वाले साहित्य को पढ़कर इसका उचित उत्तर देना होगा, उसकी आलोचनात्मक दृष्टि से परीक्षा करनी होगी। तभी हम अपनी ज्ञान परंपराओं से भली प्रकार जुड़ पायेंगे।

निष्कर्ष:- अपने मन के भावों और विचारों की अभिव्यक्ति के लिए मानव ने मौखिक एवं लिखित दो मार्ग प्रशस्त किये हैं। जब दुनिया में लिपि का विकास नहीं हुआ था, तब मनुष्य मौखिक माध्यम का प्रयोग कर चिंतन तथा ज्ञान का संप्रेषण करता रहा होगा। लिपियों के उद्भव के पश्चात् मौखिक ज्ञान को लिखित रूप दिया गया। व्यक्ति अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए उदाहरणों की सहायता लेता आया है। किसी कहानी या उदाहरण के माध्यम से ज्ञान की परंपरा को आगे बढ़ाया गया और इसका लिखित व मौखिक स्वरूप साहित्य कहलाया। किसी भी प्रकार के ज्ञान को सरलता से प्रसारित करने में साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। साहित्य के अभाव में ज्ञान के सम्यक् विकास की परिकल्पना भी नहीं की जा सकती है। यदि कबीर जैसे

महान विचारक संत की बानियों को लिखित कलेवर नहीं दिया गया होता, तो कबीर की बानियाँ अपनी वास्तविकता खोकर नष्ट हो गई होतीं। साहित्य का लिखित रूप उसके मौखिक स्वरूप से अधिक प्रभावशाली होता है। इसके दोनों प्रकारों ने ही भारतीय ज्ञान परंपरा को निर्बाध गति से आगे बढ़ाया। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि भारतीय ज्ञान परंपरा और साहित्य का एक-दूसरे से अटूट रिश्ता रहा है।

संदर्भ सूची :-

- (1)श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस, गोरखपुर, अध्याय-8, श्लोक-38
- (2)सम्पूर्ण चाणक्य नीति एवं चाणक्य सूत्र, संपा. ओमप्रकाश शर्मा, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली,2020, पृ. क्र. 51
- (3)भारत भारती, मैथिलीशरण गुप्त, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2021, पृ. क्र. 20
- (4)हिन्दी साहित्य, दृष्टि पब्लिकेशंस, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली, चतुर्थ संस्करण, 2023, खण्ड-2, पृ. क्र. 6
- (5)छंद तेरी हँसी का, वशिष्ठ अनूप, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली,2023, पृ. क्र. 13

नेहा उदासी

शोधार्थी,

तुलनात्मक भाषा एवं संस्कृति अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर